इकाई 17 भारत में सहकारी आंदोलन और कृषि

संरचना

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 सहकारी समितियों की विशेषताएँ

17.2.1 सहकारी समितियां और गैर-सहकारी समितियाँ : विभेद

17.2.2 कृषि सहकारी समितियां : प्रकार और कार्य

17.3 कृषि के विशेष संदर्भ के साथ भारत में सहकारी समितियों का आविर्भाव

17.3.1 स्वतंत्रतापूर्व प्रावस्था

17.3.2 स्वातंत्र्योत्तर प्रावस्था

17.4 भारत में कृषि सहकारी समितियों का कार्य-निष्पादन

17.4.1 सहकारी समितियों का कार्य-निष्पादन प्रभावित करने वाले कारक

17.5 सहकारी समितियों से संबंधित विधेयन

17.5.1 बहुराज्य सहकारी समितियां (MSCS) अधिनियम

17.5.2 MSCS अधिनियम, 2002 में प्रस्तावित संशोधन

17.6 सारांश

17.7 शब्दावली

17.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

17.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

17.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- भारत में कृषि सहकारी समितियों के उद्भव का ऐतिहासिक विवरण दे सकेंगे;
- सहकारी संस्थाओं और अन्य संगठनों के बीच उनकी विशेषताओं, जैसे सिद्धांत, दर्शन, दृष्टिकोण आदि के आधार पर अंतर कर सकेंगे;
- सहकारी समिति के उन भिन्न-भिन्न प्रकारों को बता सकेंगे जो भारत में उसके कृषि सेक्टर की आवश्यकता पूरी करने के लिए स्थापित की गई हैं;
- प्राथमिक कृषि ऋण सहकारी समितियों (PACS) की भूमिका का आकलन कर कृषि सहकारी समितियों के कार्य निष्पादन का मूल्यांकन कर सकेंगे;
- PACS के कार्य निष्पादन को प्रभावित करने वाले कारकों की पहचान कर सकेंगे; और
- सहकारी समितियों से संबंधित कानूनों में अपेक्षित परिवर्तनों की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे ताकि भारत में उनका नवीकरण किया जा सके।

17.1 प्रस्तावना

भारत में सहकारी समितियों की आवश्यकता जिसका उद्देश्य विशाल ग्रामीण समुदाय की दशा सुदृढ़ करना था, सरकार द्वारा 100 से अधिक वर्ष पहले स्वीकार की गई थी। पश्चिम में उनकी सफलता के अनुभव के आधार पर उन गरीब किसानों की दुर्दशा का उत्तर देने की उन्होंने संकल्पना की जो मुख्यतया ऋण सुविधाओं के अभाव के कारण अत्यधिक पीड़ित थे (यद्यपि कृषि से संबंधित अन्य सेवाओं, जैसे आदानों की आपूर्ति, भंडारण/परिवहन आदि में भी सुविधाओं का अभाव था)। उद्देश्य उन स्थानीय जमींदारों और व्यापारियों पर गरीब किसानों की निर्भरता कम करना था जो बहुत ऊँची दरों पर ब्याज लेकर, प्रायः भूमि बंधक और उत्पाद विक्रय से उनका शोषण कर रहे थे। परंतु सहकारी आंदोलन, जैसा भारत में विकसित हुआ, उन प्रणालियों के अनुसार विकसित नहीं हुआ, जिनसे अन्य देशों में प्रगति और सफलता मिलती थी। सरकार द्वारा (सहकारी समितियों के कार्यकरण के लिए पूँजी देने से और उसके प्रबंधन में भी) संरक्षण दिया गया। दशाब्दियों तक संख्या के आधार पर सहकारी आंदोलन बढ़ा, परंतु वे उन सिद्धांतों पर आधारित नहीं थे जो उनकी सफलता और सुस्थिर कार्य संचालन के लिए अपेक्षित थे। जो महत्त्वपूर्ण तत्व विद्यमान नहीं था, वह था अपने ही संसाधन आधार उत्पन्न करने के लिए क्षमता निर्माण के प्रयास। भारतीय सहकारी समितियों के विकास की खराब स्थिति महसूस करते हुए भारत सरकार ने समय-समय पर कई समितियां गठित कीं जिनसे पुनःसशक्तीकरण के लिए आवश्यक उपयुक्त उपाय सुझाव देने का अनुरोध किया गया था। सहकारी समितियों के कार्य निष्पादन के अनुभव से प्राप्त प्रत्येक उपाय के अनुसार समय-समय पर कई कानून बनाए गए। उसके कार्यकरण के पिछले 100 से अधिक वर्षों के दौरान उन उपायों के बावजूद, आंदोलन वास्तविक महत्त्व प्राप्त नहीं कर सका जो इसके विकास में सोचा गया था। इस पृष्ठभूमि के विपरीत सहकारी समितियों के विकास पर प्रारंभ से ही दृष्टि डालते हुए इस इकाई का उद्देश्य भारत में सहकारी आंदोलन की भिन्न-भिन्न विशेषताओं की रूपरेखा प्रस्तुत करना है। इस इकाई में, सहकारी समितियों के कार्य-निष्पादन का आकलन किया गया है। साथ ही, ग्रामीण स्तर के किसानों की ऋण आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए उत्तरदायी इकाई– प्राथमिक कृषि ऋण समितियां (PACS) पर विशेष रूप से फोकस किया गया है। इन तत्वों को ध्यान में रखकर इकाई में उनके अच्छे कार्य-निष्पादन के लिए महत्त्वपूर्ण निर्धारकों की पहचान की गई है। अंत में, सहकारी समितियों की स्थापना के लिए किए गए विधायी प्रयासों की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं की समीक्षा करते हुए इकाई में भारत में कृषि सहकारी समितियों का कार्यकरण पद्धति सशक्त बनाने के लिए आवश्यक संशोधनों का विवरण दिया गया है।

17.2 सहकारी समितियों की विशेषताएँ

कुछ बुनियादी पहलुओं में अन्य संगठनों से सहकारी समितियां भिन्न हैं। उन्हें उनके सिद्धांतों, दर्शन और दृष्टिकोण के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। संसाधनों और लाभ के स्वामित्व की उनकी बढ़ती हुई क्रम परंपरा द्वारा वर्गीकृत धीरे-धीरे ऊपर की ओर अग्रसर होने वाले संगठनों के सामूहिक स्वामित्व को कहा जा सकता है : (i) व्यक्तिगत या पारिवारिक स्वाधिकृत उद्यम,

(ii) अनिगमित भागीदारी व्यवसाय-प्रतिष्ठान, (iii) प्राइवेट लिमिटेड फर्म के रूप में मिश्रित पूँजी कंपनियां/ज्वाइंट स्टॉक कंपनी पंजीकृत (अर्थात् निगमित), और (iv) सरकारी उपक्रम या निगम। इस क्रम परंपरा में सहकारी समितियों का वर्गीकरण पांचवे किस्म के उपक्रम के रूप में हो सकता है। हम देखेंगे कि उनके विशिष्ट स्वरूप की विरचना और कार्यकरण की दृष्टि से सभी अन्य संगठनों से वे अलग हैं। सहकारी समिति की विभेदकारी विशेषताएँ नीचे स्पष्ट की गई हैं।

17.2.1 सहकारी समितियां और गैर-सहकारी समितियां : विभेद

निजी संगठन या उपक्रम का निर्माण मूलतः लाभ कमाने के प्रयोजन से किया जाता है। सरकारी संगठन, सिवाय जब उन्हें कंपनी शैली पर चलाया जाता है, सामान्यतया समाजीय सेवाएं देने का कार्य करता है। उदाहरण के लिए, बुनियादी सेवाओं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई में सरकार की सहभागिता में लाभ का तत्व सर्वोपरि नहीं है और पूर्णतया अप्राप्य भी हो सकता है। फिर भी, बाजार/आर्थिक सुधारों के अधीन धीरे-धीरे सार्वजनिक सेवाओं में भी कार्यकरण की कंपनी शैली अपनाई जा रही है। जहाँ अधिशेष या लाभ आवश्यक होता है वहाँ भी संगठन की दक्षता को प्राथमिकता दी जाती है। दूसरी ओर, सहकारी संगठन को उसके प्रारंभ से ही (बहुत पहले 1844 में) अपने सदस्यों के पारस्परिक लाभ के लिए गठित संगठन के रूप में सोचा गया है। सहकारी समितियों से भिन्न के मामले में वस्तु या सेवा ''अन्य'' को बेची जाती है। परंतु सहकारी समितियों के मामले में व्यापारी ग्राहक की ऐसा द्विभागीकरण नहीं होता है। इसे ध्यान में रखते हुए लक्ष्य के रूप में लाभ, यद्यपि, सहकारी उपक्रम की व्यावहारिकता की सीमा में विद्यमान है, फिर भी यह स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित नहीं होता है, बल्कि उसे उसके सदस्यों को सेवाओं के लिए कम कीमतों के रूप में दिया जाता है। इसलिए उस सीमा तक अधिशेष या लाभ सहकारी समिति के जीवित रहने एवं वृद्धि के लिए महत्त्वपूर्ण है जितना कि इसे गैर-सहकारी कंपनी होने में होता। अंतर इन पहलुओं के संबंध में अधिक महत्त्वपूर्ण ढंग से हो सकता है : (i) लाभ अर्जन/वितरण का तरीका, और (ii) लाभ के अलावा अन्य उद्देश्यों पर बल।

सहकारी समितियों के सिद्धांत

सहकारी सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय सहकारी संघ (ICA) द्वारा विकसित किए गए हैं। रॉशडेल सिद्धांतों पर आधारित (रॉशडेल सोसाइटी आफ इक्वीटेबल पायनियर, इंग्लैंड द्वारा 1844 में निर्धारित सिद्धांतों का मूल सेट उस के नाम पर रखा गया) वे ICA द्वारा 1934 के अपने सम्मेलन में पहली बार अंगीकृत किए गए थे। उन्हें बदलती हुई स्थिति के अनुसार रखने के लिए समय-समय पर संशोधित किया गया है। नवीनतम ICA, 1995 ने सहकारी समितियों के लिए दस सिद्धांत निर्धारित किए हैं। ये हैं : (i) स्वैच्छिक और खुली सदस्यता, (ii) भेदभाव रहित, (iii) अभिप्रेरणा और पुरस्कार, (iv) लोकतांत्रिक सदस्य नियंत्रण, (v) सदस्य की आर्थिक सहभागिता, (vi) सदस्यों की सीमित क्षतिपूर्ति (उनके इक्विटी पूँजी और सहकारी समिति की प्रगति के लिए अधिशेष का समुचित प्रयोग, (vii) स्वायतत्ता और स्वतंत्रता, (viii) शिक्षा, प्रशिक्षण और सूचना, (ix) सहकारी समितियों के बीच सहयोग और, (x) समुदाय के लिए चिंता। इनके साथ सिद्धांतों का निहितार्थ है : (क) सदस्य भी सहकारी समितियों की सेवाओं के उपयोक्ता हैं; (ख) प्रत्येक

सदस्य को एकसमान मतदान का अधिकार है। (एक व्यक्ति एक मत के सिद्धांत के आधार पर); (ग) सदस्य पूँजी में सम्यक दृष्टि से योगदान करते हैं और वे प्रतिलाभ के रूप में सीमित प्रतिपूर्ति प्राप्त करते हैं (जिसमें से शेष सहकारी समिति की प्रगति के लिए आगे प्रयोग किया जाता है; (घ) वे स्वरूप में स्वायत्त होते हैं, अर्थात् वे स्वावलंबी संगठन हैं जो स्वतंत्रत रूप से सरकार सहित अन्य संगठनों से करार कर सकते हैं; (ङ) वे सदस्यों को शिक्षा और प्रशिक्षण प्रदान करते हैं और सहकारी समिति के लोगों के स्वरूप के बारे में आम जनता को सूचित करते हैं; (च) वे स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संरचनाओं के माध्यम से साथ काम करके अन्य सहकारी समितियों से स्वतंत्रतापूर्वक एक-दूसरे को प्रभावित कर सकते हैं; और (छ) वे उस समुदाय के बारे में चिंतित हैं जिसमें वे रहते हैं।

सहकारी समितियों का दर्शन

सहकारी समितियों का दर्शन उनके सिद्धांतों से प्राप्त किया गया है। इसमें सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र सम्मिलित हैं। दूसरी ओर समाज के लिए चिंताओं का सिद्धांत ही उनके सामाजिक दर्शन का निर्माण करता है। उनका राजनीतिक दर्शन उसके खुली और स्वैच्छिक सदस्यता, लोकतांत्रिक सदस्य नियंत्रण और कार्य संचालन में स्वायतत्ता तथा स्वतंत्रता से प्राप्त की जाती है। सदस्य की अंश पूँजी की सीमित प्रतिपूर्ति के सिद्धांत और लाभ के शेष भाग का सहकारी समिति की प्रगति के लिए प्रयोग करना उनका आर्थिक दर्शन बनाता है। शिक्षा, प्रशिक्षण और सूचना का सिद्धांत सभी तीनों सिद्धांतों का प्रभावकारी अनुपालन और अनुप्रयोग संभव बनाता है।

व्यापारिक उद्यम के रूप में कार्य करने के लिए दृष्टिकोण

जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, सहकारी समितियों में ग्राहक-व्यापारी का द्विभागीकरण नहीं है। उनके दृष्टिकोण में आगे अंतर निम्नलिखित आधार पर निर्दिष्ट किए जा सकते हैं : (i) सहायता, (ii) पूँजी जुटाना और पूँजी के लिए प्रतिलाभ, (iii) निर्णय करना और नियंत्रण, तथा (iv) सदस्यों और प्रबंधन के बीच संबंध। यद्यपि भागीदारी व्यापार प्रतिष्ठानों में सदस्यता बंद रहती है परंतु खुली और स्वैच्छिक सहायता सहकारी समितियों की विशेषता है यही विशेषता संयुक्त पूँजी कंपनियों में भी पाई जाती है। परंतु सदस्यों का एक-दूसरे से व्यक्तिगत परिचय की विशेषता सहकारी समितियां ही होती हैं इसका संयुक्त पूँजी कंपनियों में अभाव रहता है। इसके अलावा, सहकारी समितियों की सदस्यता वे चाहते हैं, जो स्वावलंबी होना चाहते हैं। समाज के कमजोर वर्गों में भी सहकार प्रबल होता है, क्योंकि वे जानते हैं कि वे व्यक्तिगत रूप से अपनी सहायता स्वयं नहीं कर सकते हैं। पूँजी जुटाने पर यद्यपि निजी व्यापार उधार ले सकता है या शेयर जारी कर सकता है परंतु सहकारी समितियां अपनी आत्मनिर्भरता पर अपने दृढ़संकल्प के नाते पूँजी में ऐसा नहीं करतीं। इसके अलावा, सहकारी समितियों में निर्णय करने की शक्ति उसकी आम सभा में निहित है जबकि भागीदारी कंपनियों में यह सीमित व्यक्तियों में है और संयुक्त पूँजी कंपनियों में यह व्यावसायिकों द्वारा चलाया जाता है जो उद्यम चलाने के जोखिमों और अनिश्चितता में भागीदारी नहीं करते। अंत में सदस्यों के बीच संबंध समुदाय और सहयोग के विकास की अवधारणा पर आधारित होते हैं। सहकारी समितियों

के सभी सदस्यों को एकसमान माना जाता है और वे सहकारी उद्यम के जोखिमों का संयुक्त रूप वहन करते हैं।

17.2.2 कृषि सहकारी समितियां : प्रकार और कार्य

कृषि सहकारी समिति कृषि (जैसे खेती, विपणन आदि) से संबंधित आम कार्य करने वाले व्यक्तियों के समूह का उद्यम है और जो अपनी आम समस्याओं जैसे ऋण, आदानों की आपूर्ति आदि के कारण एक साथ हुए हैं। भारत में ऋण सहकारी समितियां तीन-स्तरीय संरचना में अनुक्रम रूप से विकसित हुई हैं। ये आधार/ग्राम स्तर पर प्राथमिक कृषि ऋण समितियां (PAC), जिला स्तर पर जिला केंद्रीय सहकारी बैंक (DCCB) और राज्य स्तर पर राज्य सहकारी बैंक (SCB) हैं। इस प्रकार SCB शीर्षस्थ बैंक है जबकि प्रचालनात्मक स्तर पर PACS हैं, जिनसे अपने सदस्यों की आर्थिक सहकारी हितों के संवर्धन की आशा की जाती है। PACS के आम उद्देश्य इस प्रकार हैं : (i) सदस्यों में बचत को प्रोत्साहित करना, (ii) सदस्यों को ऋण देना, (iii) कृषि संबंधी और पारिवारिक आवश्यकताओं की आपूर्ति करना, और (iv) उनके कृषि उत्पादों के विपणन की व्यवस्था करना। ऋण सहायता तीन प्रकार की होती हैः अल्पकालिक ऋण, मध्यकालिक ऋण, दीर्घकालिक ऋण। अल्पकालिक ऋण बीजों, उर्वरकों और कीटनाशकों की खरीद के लिए और किसानों की मौसमी पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होते हैं। मध्यकालिक ऋण बैलगाड़ी, दुग्ध पशु, उन्नत औजारों, भूमि और कुंओं के सुधार के लिए होता है। दीर्घकालिक ऋण भूमि के स्थायी सुधार, कुंओं और कुंडों के निर्माण, पम्पसेट और अन्य जल उठाने के साधन लगाने, ट्रैक्टरों की खरीद आदि के लिए होता है। सहकारी समितियां गांव के लिए कृषि उत्पादन की योजना बनाने और क्रियान्वित करने तथा शिक्षाप्रद, सलाहकारी और कल्याणकारी कार्यों में भी सहायता करती हैं।

प्रदत्त सेवाओं/क्रियाकलापों के आधार पर कृषि सहकारी समितियां इस प्रकार भी वर्गीकृत की जा सकती हैंः (i) सहकारी कृषि सहकारी समिति, और (ii) सहकारी सेवा सहकारी समिति। पूर्ववर्ती को आगे तीन प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है। जैसे (क) सहकारी काश्तकारी कृषि सहकारी समिति, (ख) सहकारी संयुक्त कृषि सहकारी समिति, (ग) सहकारी सामूहिक कृषि सहकारी समिति। सहकारी काश्तकारी कृषि सोसाइटी में सोसाइटी द्वारा भूमि का विशाल क्षेत्र ग्रहण किया जाता है और तब छोटे-छोटे भूखंडों में विभाजित कर उन काश्तकार किसानों को आबंटित किया जाता है जो सोसाइटी के सदस्य हैं। काश्तकार भूमि के उत्पाद के हकदार होते हैं परंतु उन्हें सोसाइटी को निर्धारित किराया देना पड़ता है। सोसाइटी ऋण, बीज, खाद और भारी कृषि औजारों की आपूर्ति का भार अपने ऊपर लेती है। सहकारी संयुक्त कृषि सोसाइटी में भूमिधारक संयुक्त खेती के लिए अपने छोटे-छोटे भूखंडों को मिला लेते हैं। भूखंडों का स्वामित्व मालिकों के पास रहता है परंतु खेती सोसाइटी द्वारा लिए गए कार्यक्रमबद्ध निर्णयों के अनुसार की जाती है। प्रत्येक सदस्य भूमि के स्वामित्व का ध्यान किए बिना अपने दैनिक श्रम के लिए मजदूरी प्राप्त करता है।

पैदा किए गए उत्पाद का निपटान सामूहिक रूप से किया जाता है। सहकारी सामूहिक कृषि सोसाइटी में भी भूमि पर खेती संयुक्त रूप से की जाती है परंतु भूमि का स्वामित्व सोसाइटी के पास चला जाता है। उत्पाद सामूहिक रूप

से पैदा किये जाते हैं और प्रत्येक द्वारा किए गए श्रम और अन्य संसाधनों के अनुपात में सदस्यों में वितरित किया जाता है। इसके अलावा प्रत्येक सदस्य किए गए कार्य की मजदूरी प्राप्त करता है और शुद्ध लाभ प्रत्येक सदस्य द्वारा अर्जित मजदूरी के अनुपात में विभाजित किया जाता है।

आधुनिक वैज्ञानिक कृषि विधियों के विकास से खेती करने वाले किसानों की बाहरी आपूर्ति पर निर्भरता बढ़ गई है। कृषि सेवा सहकारी समितियां यहां आवश्यक कृषि सेवाओं की आपूर्तियों का सतत् प्रवाह बनाए रखकर उपयोगी भूमिका निभाती है। इस प्रकार सेवा सहकारिता की अवधारणा कृषि सहकारी समितियों की पूर्ववर्ती संकल्पना से निम्नलिखित कार्यों के कारण भिन्न है : (i) कृषि आवश्यकताओं, जैसे उन्नत बीज, उर्वरक, औजार आदि की आपूर्ति की व्यवस्था करना, (ii) किराए पर कृषि मशीनरी की आपूर्ति करना तथा अनुरक्षण करना, (iii) आवश्यक पारिवारिक जरूरतों की व्यवस्था करना, और (iv) सदस्यों में ऋण और बचत प्रोत्साहित करना, ताकि वे आत्मनिर्भर हो सकें। सेवा सहकारी समितियां किसानों की विशिष्ट आवश्यकताओं जैसे सहकारी सिंचाई, चकबंदी, मृदा संरक्षण और भूमि सुधार, पशुधन प्रजनन, बीमा आदि पूरा करने के लिए गठित की गई है।

उपर्युक्त के अलावा सहकारी समिति विशिष्ट उत्पाद/सेवा के आधार पर भी गठित की गई है। इसके उदाहरण हैं : चीनी सहकारी समिति, फल और सब्जी सहकारी समिति, शीत भंडारण और मालगोदाम सहकारी समिति, चावल मिल सहकारी समिति, सहकारी कताई मिल्स, सहकारी जूट मिल्स, सहकारी तिलहन प्रोसेसिंग इकाइयां आदि। कुछ अन्य संबद्ध कृषि सहकारी समितियां भी हैं, जैसे डेयरी सहकारी समिति, मत्स्य पालन सहकारी समिति, कुक्कुट पालन सहकारी समिति, सहकारी पशु समिति आदि।

17.3 कृषि के विशेष संदर्भ के साथ भारत में सहकारी समितियों का आविर्भाव

भारत में सहकारी समितियों का विकास संकल्पनात्मक रूप से स्थानीय व्यक्तियों/किसानों की स्वैच्छिक सदस्यता पर आधारित संगठन के रूप में हुआ है। वे सहसदस्यों के कल्याण की चिंता के साथ स्वायत्त स्वावलंबी संगठन के रूप में होती हैं। अधिक महत्त्वपूर्ण तो यह है कि सहकारी समितियों से ऐसे तरीके में काम करने की आशा की जाती है कि वे सदस्यों द्वारा लिए गए ऋणों की उगाही के लिए अपेक्षित 'समकक्षी दबाव सिद्धांत'' पर प्रयास करेंगी। इसके लिए आवश्यक है कि सहकारी समितियों की सदस्यता निश्चित संख्या से अधिक नहीं होनी चाहिए ताकि समकक्षी दबाव सिद्धांत प्रयोग अनिवंचित न हो। इसके अलावा प्रारंभ में केवल अपने सदस्यों को बहुत आवश्यक ऋण सुविधा प्रदान करने के लिए होता है, परंतु सहकारी समितियों से धीरे-धीरे मितव्यय (अर्थात् बचत) समितियों के रूप में विकसित होने की आशा की जाती है। अपने वित्तीय स्वावलंबन के आधार पर आत्मनिर्भर होने की संभावना विकसित करने की भी आशा की जाती है। इसके माध्यम से सहकारी समितियों से ऐसे समाज के विकास के लिए सदस्यों को आह्वान करने की आशा की जाती है जो पारस्परिक समर्थन और स्वावलंबन पर आधारित हो।

17.3.1 स्वतंत्रतापूर्व प्रावस्था

(i) 1904-1930

1904 में पहली भारतीय सहकारी ऋण सोसाइटी का मार्ग इस अनुभूति का परिणाम था कि भारतीय किसानों की ऋणग्रस्तता और गरीबी का मूल कारण सूदखोर साहूकारों (देखिए भाग 17.7 शब्दावली में) पर उनकी निर्भरता थी। इसके अनुसरण में बहुत-सी ग्रामीण ऋण समितियां बनाई गई थीं। परंतु अगले कुछ वर्षों के दौरान उनके कार्यकरण पर अनुभव ने सरकार को अधिनियम में कमियां महसूस हुईं। इसके फलस्वरूप इस अधिनियम को 1912 में अधिक व्यापक सहकारी समिति अधिनियम से बदला गया। इस संशोधित अधिनियम से ''ऋण'' शब्द की गैर मौजूदगी दिखाती है कि प्रयासों का उद्देश्य गैर ऋण समितियों को भी मान्यता देता था। इसके बावजूद बाद के वर्षों में ग्रामीण ऋण समिति की प्रधानता जारी रही। बहुत से प्रांतों जैसे मुम्बई, मद्रास, बिहार, उड़ीसा और बंगाल ने इस 1912 के अधिनियम के आधार पर अपने-अपने सहकारी कानून बनाए। बाद में, सहकारी समितियों पर मैक्लागन समिति की रिपोर्ट (1915) के आधार पर प्रांतीय सहकारी बैंकों (PCB) की स्थापना प्रायः सभी बड़े प्रांतों में की गई। इसके बाद 1918 का अति-ब्याज ऋण अधिनियम आया जिसमें साहूकारों द्वारा लिये गये ब्याज पर उच्चतम सीमा लगाने का प्रयास किया गया, इसमें प्रावधान किया गया कि ब्याज की राशि ऋण के मूलधन से अधिक न हो।

1930 की दशाब्दी तक सहकारी बैंकों की परिस्थिति ऐसी हो गई जिससे यह स्पष्ट हो गया कि भारत में उस प्रकार का नहीं हो रहा है जैसा कि यूरोप और अन्य देशों में हुआ है। 1929 में केंद्रीय बैंकिंग जांच समिति (CBEC) की रिपोर्ट में अनुमान लगाया गया कि सहकारी ऋण के कारण वंशागत ग्रामीण ऋणग्रस्तता का संचित भार 100 करोड़ रुपये का था। सरकार ने स्वीकार किया कि सहकारी समितियों की खराब शुरुआत ही मुख्य कारणों से थी, अर्थात् (i) ग्रामीण भारत में सुस्पष्ट सामाजिक-आर्थिक विभाजन, और (ii) बहुत से मामलों में धनी जमींदारों और साहूकारों द्वारा सहकारी समितियों का संचलन। यह अनुभव किया गया कि सहकारी समितियां ग्रामीण साहूकारों से लेन-देन का केवल अतिरिक्त तरीका बन गया था, विकल्प नहीं।

इन निराशाजनक परिणामों के बावजूद भारत में कृषि पर रायल कमीशन ने 1928 में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में सुझाव दिया कि सहकारी आंदोलन को न केवल ग्रामीण ऋण का विस्तार करने पर ध्यान केंद्रित करना जारी रखना चाहिए बल्कि सरकार को भी सहकारी सेक्टर को सहायता और संरक्षण देना चाहिए। इसलिए बाद में वाद-विवाद इस पर केंद्रित रहा कि ग्रामीण स्तर पर एक ही प्रयोजन की सहकारी समिति होनी चाहिए या बहु-प्रयोजनीय होनी चाहिए।

(ii) 1930-1950

भारत में स्वतंत्रतापूर्व सहकारी आंदोलन की दूसरी प्रावस्था वर्ष 1930-1950 हो सकती है। भयंकर मंदी की अवधि के दौरान कृषि मूल्यों में भारी गिरावट आई थी, उधार लेने वालों की भूमि की कुर्की के कानूनी मामले भारी संख्या में हुए। इसकी सरकारी प्रतिक्रिया ऋण समाशोधन अधिनियमों की बाढ़ थी जिन्हें वर्ष

1933 से 1936 के दौरान बहुत-सी प्रांतीय सरकारों द्वारा पारित किया गया था। इस प्रक्रिया की 1935 के कर्जदार संरक्षण अधिनियम द्वारा पूरा किया गया, जिसमें साहूकारों के लिए अनिवार्य लाइसेंसिंग और पंजीकरण का प्रावधान है ताकि लेन-देन और खातों का समुचित रिकार्ड रखा जाए। इस प्रावस्था के दौरान प्रमुख परिवर्धन 1934 में RBI अधिनियम का सांविधिक समावेशन था, इसमें सहकारी ऋण प्रणाली को पुनर्वित्तीयन सुविधाओं का विस्तार करने के लिए RBI में कृषि ऋण विभाग ACD की स्थापना का प्रावधान किया गया। इसके अधीन व्यवहार्य प्रांतीय सहकारी बैंकों, विपणन समितियों और प्राथमिक कृषि ऋण समितियों की स्थापना और सुदृढ़ीकरण पर बल दिया गया था। 1942 में फसलों के ऋतुनिष्ठ प्रचालन और विपणन के लिए प्रांतीय सहकारी बैंकों को ऋण सुविधाएं देना भी शुरू हुआ। 1945 में दो समितियाँ, अर्थात् कृषि वित्त उपसमिति और सहकारी योजना समिति (CPC) गठित की गई। इन दो समितियों की स्थापना विशेष रूप से ग्रामीण सहकारी आंदोलन में रुग्णता के संकेतों पर गंभीर रिपोर्टों के पृष्ठपट में थी। बहुत सी सहकारी समितियां चुकौती में भारी बकाया के कारण अवरुद्ध परिसंपत्तियों की समस्या से भारी दबाव में थीं। इस स्थिति से निपटने के लिए उप-समिति की सिफारिश थी कि समितियों के दावों का समायोजन करने के लिए अवरुद्ध परिसंपत्तियों का परिसमापन किया जाना चाहिए। CPC ने उनकी असफलता के मुख्य कारण के रूप में प्राथमिक सहकारी समितियों का छोटा आकार पाया। उनकी गिरती हुई स्थिति पुनः प्रवलन के उपाय के रूप में CPC ने सहकारी सेक्टर को राज्य के संरक्षण की वकालत की। यह सुझाव स्वीकार किया गया और अनुवर्ती वर्षों में क्रियान्वित भी किया गया। परंतु यह सुझाव सहकारी आंदोलन अर्थात् सहकारी समितियों का सदस्य केंद्रित विशेषता के अपरदन की शुरुआत सिद्ध हुई। दूसरे शब्दों में, CPC के दो सुझावों, अर्थात् राज्य संरक्षण और इसके साथ ही सहकारी समितियों की सदस्यता संख्या में वृद्धि बाद के वर्षों में सहकारी सिद्धांतों के अपरदन के कारक हुए, इसने उनके अदक्ष कार्यकरण में योगदान किया।

17.3.2 स्वातंत्र्योत्तर प्रावस्था

(i) 1950-1970

तेज और समतापूर्ण आर्थिक विकास पर केंद्रीय नीति फोकस होने के कारण स्वतंत्रता के तत्काल बाद के वर्षों ने देखा कि सहकारी आंदोलन फिर से अधिक प्रमुख स्थान प्राप्त कर रहा है। अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण (AIRCS: 1951-1954) ने प्रकट किया कि (i) लगभग 50 वर्षों से सहकारी ऋण समितियां अस्तित्व में होते हुए भी ग्रामीण में ऋण की आवश्यकताओं के लिए औपचारिक ऋण संस्थाओं का अंश 9 प्रतिशत से कम था और उसके अंतर्गत सहकारी समितियों का अंश 5 प्रतिशत से कम था, और (ii) व्यापारियों और धनी जमींदारों द्वारा दिया गया कर्ज ग्रामीण ऋण का 75 प्रतिशत से अधिक था। इस स्थिति को सुधारने के लिए AIRCS ने सुझाव दिया था कि (i) सहकारी समितियों को एकीकृत ग्रामीण ऋण योजना में अगुआई करनी चाहिए जिसके अधीन कृषि के लिए ऋण देने के मामले में सहकारी समितियों के अलावा सभी वाणिज्यिक बैंकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका की संकल्पना की गई है और (ii) वाणिज्यिक बैंकों की भूमिका प्रत्यक्ष फार्म उत्पाद प्रकार्यों के बदले कृषि विपणन और संसाधन कार्यों

के लिए ऋण देने में होनी चाहिए। इस प्रकार इसने दो संस्थाएं बनाकर ऋण प्रकार्यों की भूमिका को ऋणेत्तर स्वरूप की भूमिका से पृथक किया है (अर्थात् सहकारी और वाणिज्यिक बैंक) जो अपने-अपने क्षेत्र में उत्तरदायी होंगे। 1954 में RBI ने प्रत्येक बैंक रहित ग्रामीण और अर्ध ग्रामीण क्षेत्रों में कम से कम एक शाखा खोलने के लिए सभी वाणिज्यिक बैंकों को निर्देश जारी किए। यद्यपि इन उपायों से ग्रामीण ऋण बैंकों/सहकारी समितियों के अंश ने 20 प्रतिशत का आंकड़ा पार कर लिया था, परंतु ग्रामीण ऋण में वाणिज्य बैंकों का अंश 2.4 प्रतिशत के निम्न स्तर पर ही रहा। साधारणतः ग्रामीण संस्थागत ऋण प्रवाह के संबंध में इस सुधार के बावजूद यह अनुभव किया गया कि सहकारी समितियों पर ग्रामीण धनी वर्ग का ही वर्चस्व जारी रहा और वाणिज्यिक बैंक अपने प्रचालन में ग्रामीण पूर्वग्रह ग्रस्त बने रहे। इस प्रवृत्ति के पीछे निहित कारणों पर विचार करते हुए के. एन. राज ने 1965 में प्रेक्षण किया कि इसके महत्त्वपूर्ण कारण हैं: बैंकिंग उद्यम अपना लाभ अधिकतम करने के प्रयास में ऐसे क्षेत्रों और कार्यों के सेक्टर में जाने का साहस नहीं करेंगे जिनमें व्यापक सामाजिक और आर्थिक हितों की प्राथमिकता उच्च होती है।

उनका तर्क था कि ग्रामीण ऋण, जिसे सूदखोर साहूकारों से उन्हें मुक्त करने के लिए गरीबों तक पहुंचाना आवश्यक था, मात्र पण्यवस्तु नहीं था। उसे भारत जैसी पिछड़ी कृषि संबंधी अर्थव्यवस्था के लिए महत्त्वपूर्ण ''सार्वजनिक पदार्थ'' के रूप में देखा जाना चाहिए। पिछली सैद्धांतिक नींवों पर आधारित (जो उधार लेने और उधार देने की प्रथाओं के मूल में होता है), राज ने अधिक वर्गों को संस्थागत ऋण के दायरे में लाने अपने विचार संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किए, ''बैंकिंग कार्यों में लाभ कमाने का यही आधार उद्यम के लिए सीमाएँ निर्धारित करता है। यह दिखा सकता है कि बहुत छोटे उधार लेने वालों से सौदा करने का सूचना और लेन-देन लागत बहुत अधिक होती है जो हतोत्साहित होने का प्रमुख कारण है। इस दृष्टि से 1969 में भारत के 14 सबसे बड़े अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण को सामान्य रूप से ग्रामीण विकास के लिए संस्थागत ऋण और खासतौर पर कृषि ऋण की आवश्यकताओं के नए युग में प्रवेश करने के लिए बड़ी नीतिगत पहल के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।''

(ii) 1970-1990

1970-1990 की दशाब्दियों ने सहकारी संस्थाओं के संचालन में राज्य की प्रत्यक्ष सहभागिता सुदृढ़ की। राजकीय नीति इस दृष्टि से प्रारंभ की जाने लगी कि सरकार को सहकारी समितियों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में सस्ते संस्थागत ऋण की आपूर्ति सुनिश्चित करनी चाहिए। बावा समिति (1971) ने जनजाति क्षेत्रों में विशाल बहुप्रयोजनीय सहकारी समितियां स्थापित करने की सिफारिश की। राष्ट्रीय कृषि आयोग (1976) ने राष्ट्रीयकृत बैंकों के सक्रिय सहयोग से किसान सेवा सहकारी समितियां स्थापित करने की सिफारिश की। इसके अलावा सिवरामन समिति (1981) के आधार पर एक नयी मुख्य संस्थागत संरचना अर्थात् राष्ट्रीय कृषि और ग्राम विकास बैंक (नाबार्ड) 1982 में बनाया गया। नाबार्ड ने (RBI के तीन स्कन्धों अर्थात् कृषि ऋण विभाग (ACD), ग्रामीण योजना और ऋण

प्रकोष्ठ (RPCC) और कृषि पुनर्वित्तीयन और विकास निगम (ARDC) का स्थान लिया।

ग्रामीण क्षेत्रों का संस्थागत ऋण वितरण के मुख्य माध्यम के रूप में सहकारी समितियों को दी गई प्रमुखता में सरकार ने सीधे विशाल धनराशि डाली है। ऊपरी निःश्रेणी (टियर) के सहकारी बैंकों को सार्वजनिक जमा राशियां स्वीकार करने तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से उधार लेने के लिए प्रोत्साहित किया गया। परंतु धीरे-धीरे इस प्रणाली का अतिदेय (पुराने बकाए) का भार बढ़ने लगा। यहां तक कि बैंकों की राष्ट्रीयकरण पश्च की प्रावस्था के दौरान ग्रामीण सेक्टर में वाणिज्यिक बैठकों की गहरी पैठ थी, सरकार की वित्तीय सहभागिता भी बढ़ी हुई थी, परंतु सहकारी संस्थाओं के कामकाज में नौकरशाही का पर्याप्त हस्तक्षेप था। ऋण क्षमता के मानदंडों पर समझौता करना प्रायः बेबसी थी। सहकारी समितियों का प्रयोग राजनीतिज्ञों द्वारा गरीबी के लिए बहुत से साहाय्य आधारित कार्यक्रमों को प्रारंभ करने के लिए किया जाता था। सहकारी समितियों के निर्णयों को प्रभावित करने के लिए सहकारी समितियों के बोर्डों में सदस्यता में राजनीतिक वर्ग के सदस्यों को स्थान देकर, राजनीतिक संरक्षण देने आदि के लिए वाहक के रूप में प्रयुक्त की जाती थी। धीरे-धीरे दी गई ऋण की गुणवत्ता का क्षय होता गया और ऋण वसूली में भी समस्याएं उत्पन्न हुईं। किसानों को ऋण से छूट की 1989 की योजना ने सहकारी पद्धति में पहले से ही कमजोर ऋण अनुशासन को बहुत अधिक बिगाड़ दिया और सहकारी समितियों की वित्तीय दशा और भी क्षीण कर दी। इस प्रवृत्ति पर कृषि ऋण समीक्षा समिति (खुसरो समिति, 1989) ने सहकारी समितियों के लिए मितव्ययता और बचत का सुझाव दिया। स्थानीय स्तर पर बेहतर व्यापार योजना की आवश्यकता पर बल देते हुए समिति ने सहकारी समितियों को आत्मनिर्भर बनने की सिफारिश की।

(iii) 1990 के दशक के बाद

1990 के दशक के बाद सहकारी समितियों के पुनःपोषण के तरीके तलाशने के अधिक सम्मिलित प्रयास किए गए। सहकारी सेक्टर के सुधार के उपाय सुझाने के लिए कई समितियां गठित की गईं। चौधरी ब्रह्म प्रकाश समिति (1991) ने सहकारी समिति के लोकतांत्रिक स्वरूप को बहाल करने और सहकारी समितियों पर विद्यमान कानूनों में त्रुटियों का संशोधन करने के लिए मॉडल कानून तैयार करने का सुझाव दिया। इसके फलस्वरूप, आंध्र प्रदेश पहला राज्य था जिसने 1995 में परस्पर सहायता सहकारी समिति (MACS) अधिनियम बनाया। इसके बाद आठ अन्य राज्यों ने इसी मार्ग का अनुसरण किया। सभी मामलों में नया कानून सहकारी समितियों के लिए राज्य की सहभागिता या उसकी सहायता के बिना लोकतांत्रिक, आत्मनिर्भर और सदस्य केंद्रित बनने का प्रावधान करता है। यद्यपि नए कानूनों से स्वायत्त वित्तीय सहकारी समितियों की नई पीढ़ी के आविर्भाव का मार्ग प्रशस्त करता है परंतु इन परिवर्धनों ने भी सहकारी समितियों के कार्यकरण के तरीके पर कोई प्रभाव नहीं डाला। इसलिए कई विशेषज्ञ/सलाहकार समितियों और कार्यदलों का गठन हुआ। RBI द्वारा (प्रो. ए. वैद्यनाथन की अध्यक्षता में 2004 में) ''सहकारी समितियों का पुनरुद्धार'' पर कार्य दल का गठन भारत में सहकारी समितियों के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। यह न केवल भारत में सहकारी अनुभव के 100 वर्षों के पूरा होने के

कारण महत्त्वपूर्ण था बल्कि कई अन्य समितियों द्वारा इसकी अधिकांश सिफारिश पर पुनः बल दिया गया और बाद के वर्षों में उन्हें सरकार ने क्रियान्वित किया। इस कार्य दल की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सिफारिशों में दो हैं : (i) सहकारी संस्थाओं को लोकतांत्रिक, सदस्य संचालित, स्वायत्त और आत्मनिर्भर बनाने के लिए कानूनी ढांचे और संस्थागत संरचना में सुधार, और (ii) केंद्र और राज्य दोनों सरकारों द्वारा परस्पर सहभागिता द्वारा सहकारी समितियों को वित्तीय सहायता प्रदान करने का विचार, जिसका उद्देश्य संचित क्षतियों को समाप्त करना और उनका पूँजी आधार सुदृढ़ करना है। अभी हाल ही में गठित समितियों में से रिपोर्ट एस.जी. पाटिल की अध्यक्षता में सहकारी समितियों पर उच्च शक्ति प्राप्त समिति (2009) है की रिपोर्ट उपलब्ध है। इसका कहना है कि बारबार सरकारों और योजना आयोग द्वारा लगातार बल देने के बावजूद सहकारी समितियों को उनका सही महत्त्व नहीं दिया गया है। समिति ने संविधान से और बहुराज्य सहकारी अधिनियम, 2002 में विशिष्ट कुछ संशोधन विनिर्दिष्ट किए। आप उनके बारे में इस इकाई के भाग 17.5 में पढ़ेंगे।

बोध प्रश्न 1

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) किस तरीके में 1918 के अतिब्याज उधार अधिनियम ने ऋणग्रस्त किसानों की सहायता करने का प्रयास किया?

.....

.....

.....

.....

2) वे दो कारण क्या हैं जिनसे भारत में सहकारी समितियां 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में अपने निर्माण के प्रारंभिक वर्षों में सफल नहीं हो सकी?

.....

.....

.....

.....

3) किस अधिनियम ने अनौपचारिक ग्रामीण ऋण लेन-देन का रिकार्ड रखने का प्रयास किया? इसने किस तरीके से इसे प्राप्त करने का प्रयास किया?

.....

.....

.....

.....

4) सहकारी योजना समिति के महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष क्या थे जिनमें भारत में सहकारी समितियों की असफलता के कारण भी बताए गए थे?

.....

.....

.....

.....

5) सहकारी समितियों के कार्य-निष्पादन पर AIRCS (1951-54) सर्वेक्षण के दो निष्कर्ष क्या थे?

.....

.....

.....

.....

6) प्रसिद्ध अर्थशास्त्री स्व. प्रो. के.एन. राज ने सामाजिक सेक्टर बैंकिंग के मामले में वाणिज्यिक बैंकों के घटिया कार्य-निष्पादन में विभेद कैसे किया?

.....

.....

.....

.....

7) 1960 के दशक के अंत में कृषि के लिए प्राथमिकता सेक्टर बैकिंग पर सरकार द्वारा लिए गए मुख्य नीतिगत निर्णय क्या थे? वे संस्थागत पुनर्संरचना परिवर्तन क्या थे जिनका अनुसरण सरकार के इस मुख्य नीतिगत निर्णय के बाद अनुवर्ती दशाब्दी में किया गया?

.....

.....

.....

.....

8) क्या आप उस एक योजना की पहचान कर सकते हैं जिसने 1980 के दशक के अंतर में सहकारी समितियों का ऋण अनुशासन की समस्या को अधिक गंभीर बनाने में योगदान किया? किस समिति ने दो उपायों का सुझाव दिया जो ऐसे संदर्भ में स्वावलंबी होने के लिए सहकारी समितियों के लिए अपेक्षित थे?

.....

.....

.....

.....

9) बहुत-सी राज्य सरकारों द्वारा 1990 की दशाब्दी के बाद बनाए गए नए कानूनों ने किस तरीके से भारत में सहकारी समितियों के उद्देश्य में सहायता की?

.....

.....

.....

.....

10) किन कारणों से आप 2004 में गठित ''सहकारी संस्थानों का पुनरुद्धार'' पर कार्यदल को भारतीय सहकारी समितियों के इतिहास में महत्त्वपूर्ण विकास समझते हैं? इस कार्यदल की दो महत्त्वपूर्ण सिफारिशें क्या थीं?

.....

.....

.....

.....

17.4 भारत में कृषि सहकारी समितियों का कार्य-निष्पादन

सहकारी समितियों के कार्य-निष्पादन का मूल्यांकन निम्नलिखित चरों पर अनुभवजन्य आंकड़ों के आधार पर किया जा सकता है : सहकारी समितियों की संख्या, सहकारी समितियों में सदस्यों की संख्या, प्रति समिति औसत सदस्य, कुल जमाराशि, कुल ऋण, ऋण शेष, ऋण लेने वाले सदस्यों की संख्या, दिए गए ऋण से ऋण शेयर का अनुपात, आदि। यद्यपि समष्टि स्तर के आंकड़े (अर्थात् अखिल भारतीय सर्वेक्षण परिणामों पर आधारित आंकड़े) औसत स्तर पर सहकारी समितियों का कार्य-निष्पादन ज्ञात करने में सहायक होते हैं, परंतु वे सहकारी समितियों के विशिष्ट उदाहरणों को छुपाते हैं जिन्होंने बेहतर कार्य किया है। उनके बारे में जानने के लिए हमें व्यष्टि स्तर के मामलों के अध्ययनों तक जाना आवश्यक होगा। इस भाग में हम समग्र रूप में PACS (अर्थात् प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों) के कार्य-निष्पादन पर विचार करेंगे। PACS पर फोकस करने का कारण यह है कि वे आवेदकों/किसानों के ऋण वितरण करने के लिए उत्तरदायी निम्नतम स्तर की इकाइयां हैं। इनके आंकड़े तालिका 17.1 में प्रस्तुत हैं। इनमें स्पष्ट होता है :

1) दिए गए ऋण के आधार पर 1951-2010 की अवधि के दौरान दीर्घकालिक औसत वार्षिक वृद्धि 14.4 प्रतिशत के उच्च स्तर पर रही है,

2) परंतु शेष ऋण भी उसी दर पर बढ़ा है, अर्थात् 14 प्रतिशत (1951-2012 के दौरान) की औसत वार्षिक। इसने शेष ऋण से दिए गए ऋण का अनुपात समनुरूप 1 से ऊपर रखा है। यह ऋणों की वसूली में सहकारी समितियों के घटिया निष्पादन का सूचक है। कुल में इस परिदृश्य के बावजूद अलग-अलग सेक्टरों में सफलता की कहानियां भी हैं जिन्हें समष्टि आंकड़ों के विश्लेषण द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता।

तालिका 17.1 : PACS की वृद्धि : 1951 से 2010 तक

वर्ष	1951	1961	1971	1981	1991	2001	2006	2010
संख्या (लाखों में)	1.1	2.1	1.6	0.9	0.8	1.0	1.1	1.0
सदस्य (लाखों में)	44.1	170.4	309.6	576.5	801.2	999.2	1252.0	1264.2
औसत सदस्य प्रति PACS	42.0	80.4	192.3	613.3	966.4	1011.3	1176.8	1264.2
जमाराशि (करोड़ में)	4.5	14.5	69.4	291.3	1349.0	13481.1	12561.2	35286.1
ऋण (A) (करोड़ में)	22.9	202.7	577.9	1769.4	4678.9	25698.3	42919.6	74937.5
शेष ऋण (B) (करोड़ में)	29.1	218.0	787.5	2450.6	6877.2	34522.3	51779.0	76479.8
अनुपात B का A से	1.3	1.1	1.4	1.4	1.5	1.3	1.2	1.0

स्रोत : NAFSCOB, PACS का कार्य-निष्पादन, 2009-10

ऋणेत्तर सहकारी सफलता के साक्ष्य

स्वतंत्रता के बाद पहले कुछ दशाब्दियों के दौरान, सहकारी सेक्टर ने प्राथमिक सेक्टर उत्पादन में महत्त्वपूर्ण योगदान करने में महंती भूमिका निभाई है। इसकी भूमिका बीजों की नई किस्मों, उर्वरकों और नकदी ऋण वितरण करने के नेटवर्क बनाकर तथा सहभागिता का वातावरण और गरीब लोगों में आशा उत्पन्न कर हरित क्रांति की सहायता करना था। गुजरात में अमूल से प्रारंभ करते हुए इसने डेयरी सेक्टर में असाधारण प्रगति की। इस समय वहां 170 से अधिक जिला सहकारी दुग्ध उत्पादक संघ हैं। डेयरी सेक्टर में सहकारी समितियों ने विशालतम दुग्ध उत्पादन करने वाले राष्ट्र के रूप में भारत का रूपांतरण किया है, देशभर में लाखों दुग्ध उत्पादकों की पारिवारिक आय में पर्याप्त वृद्धि की है, परंतु बाद में इस सेक्टर ने थकावट के चिन्ह दिखाने शुरू कर दिए। डेयरी सेक्टर में उत्पादन आगे नहीं बढ़ा है और पूँजी निर्माण की दर अपर्याप्त है।

17.4.1 सहकारी समितियों के कार्य-निष्पादन को प्रभावित करने वाले कारक

भारत में सहकारी समितियों के घटिया कार्य-निष्पादन के लिए उत्तरदायी कारक की पहचान इस प्रकार की जा सकती है:

सदस्यता आकार : प्रारंभ में, मैकलेगमन समिति (1914) ने सहकारी समितियों के छोटे आकार पर बल दिया था। परंतु सहकारी समितियों को सभी बुराइयों के लिए रामबाण के रूप में देखने से वर्षानुवर्ष सहकारी समितियों की सहायता का आकार बढ़ा। यह इस मान्यता के कारण हुआ कि सहकारिता की अर्थक्षमता सुनिश्चित करने का सबसे सरल उपाय अधिक सहायता प्रदान कर उसका आकार बढ़ाने को मान लिया गया। समष्टि स्तर के आंकड़ों का अनुभाविक सत्यापन प्रकट करता है कि जैसे PACS की सदस्यता का आकार बढ़ता है, ऋण वसूली उतनी ही कठिन हो जाती है। इस प्रकार, समकक्षी दबाव, जिससे वसूली पूँजी का पुनःचक्रण सुनिश्चित करने की आशा की गई है, विशाल सदस्यता आकार पाकर समाप्त हो गया। परिणामतः ऋण बकाया ने सहकारी समितियों के कार्य-निष्पादन को बुरी तरह से प्रभावित किया।

सरकार की सहभागिता और नियंत्रण : PACS की अंश पूँजी में सरकार द्वारा बढ़ा हुआ अंशदान भी उनके निष्पादन के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ। सिद्धांततः सहकारी समितियों से आत्मनिर्भर स्वरूप ग्रहण करने की आशा की जाती है, अर्थात् उनसे न तो राज्य से और न ही बाजार से धन लेने की आशा की जाती है। सरकार केंद्रित सहकारी संरचना ने (जो सरकार द्वारा डाली गई पूँजी से बनाई जाती है), भारत में सहकारी समितियों के सदस्य केंद्रित प्रचालन के सिद्धांत के उल्लंघन में योगदान किया है।

सहकारी नेतृत्व का नौकरशाहीकरण/राजनीतिकरण : औपनिवेशी शासकों ने सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार के पद का प्रावधान किया था। यह तर्क दिया जाता है कि ऐसी पदस्थिति लोगों के आंदोलन के रूप में उन्हें विकसित न होने देने के लिए सहकारी समितियों पर नियंत्रण का प्रयोग करने के लिए बनाया गया था। स्वतंत्र भारत की सरकार ने न केवल यह पदस्थिति बनाए रखी बल्कि सहकारी समितियों के प्रशासन और प्रबंधन के लिए नौकरशाही शक्ति ढांचे की जटिल संरचना भी जोड़ी। इसके अलावा, सहकारिता आंदोलन के तर्क/सिद्धांतों के विरुद्ध जाते हुए सहकारी समितियों के बोर्डों में महत्त्वाकांक्षी राजनीतिक व्यक्तियों की नियुक्ति की प्रवृत्ति द्वारा सहकारिता नेतृत्व का राजनीतिकरण भी किया।

बहुदिशिक सुधार एजेंडा का अभाव : अर्थव्यवस्था के खुलेपन के फलस्वरूप बहुत से सेवा क्षेत्रों से सरकार की वापसी की प्रक्रिया में सहकारी उद्यमों के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया। दूसरे शब्दों में, बढ़े हुए वैश्वीकरण के दबावों के संदर्भ में सहकारिता स्वावलंबन को अधिक बढ़ावा मिलना चाहिए था। परंतु यह नहीं हुआ है। इसके 100 वर्षों के इतिहास के बाद भी यह आंदोलन अपनी आधारभूत त्रुटियों के कारण उपयुक्त महत्त्व नहीं पा सका। इसलिए कानूनी, संस्थानिक और नीति परिवर्तनों के सभी पहलुओं को शामिल करते हुए बहुदिशिक सुधार एजेंडा अपनाकर सहकारिता सेक्टर का व्यापक रूप से पुनरुद्धार करना और सुदृढ़ करना आवश्यक है।

बोध प्रश्न 2

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) संगठनों के संसाधनों और नियंत्रण के उनके स्वामित्व के आधार पर पांच भिन्न-भिन्न प्रकार क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

2) द्विभागीकृत संबंध का अभाव किस प्रकार सहकारी समितियों के संगठनों के सभी अन्य प्रकारों से पृथक करता है? इस मुख्य अंतर के अलावा, व्यापारिक उद्यमों के रूप में कार्य करने के लिए सहकारी समितियों के दृष्टिकोण के अनुसार अन्य चार अंतर क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

3) ICA 1995 द्वारा अंगीकृत सहकारी समितियों के भिन्न-भिन्न सिद्धांत बताइए?

.....

.....

.....

.....

4) कृषि को PACS द्वारा दिए गए ऋण के तीन प्रकार क्या हैं? ये किन कार्यों के निर्मित दिए जाते हैं?

.....

.....

.....

.....

5) कृषि सहकारी खेती समितियों के तीन भिन्न-भिन्न प्रकारों का उल्लेख कीजिए। इन तीन समितियों में से किसमे भूमि का स्वामित्व सदस्यों के स्वामित्व से समितियों को अंतरित हो जाता है।

.....

.....

.....

.....

6) 'कृषि सेवा समितियों' के चार कार्य बताइए। किसानों की विशिष्ट आवश्यकताओं का प्रकार बताइए जिसे सेवा सहकारिता समितियां पूरा करती हैं।

.....

.....

.....

.....

7) PACS द्वारा 1951-2010 के अवधि के दौरान ''दिए गए ऋण'' के संबंध में वृद्धि दर क्या रही है? इसी अवधि के दौरान ''ऋण बकाया'' से इसकी तुलना किस प्रकार है?

.....

.....

.....

.....

8) भारत में सहकारी समितियों ने हरित क्रांति में कैसे योगदान किया है? किस खास क्षेत्र में सहकारी समितियों की सफलता विशेष रूप से प्रशंसनीय रही है?

.....

.....

.....

.....

9) किस खास सेक्टर को आप भारत में PACS के प्रतिकूल निष्पादन का संभव कारण कह सकते हैं? यह सहकारी समितियों के किस विशेष सिद्धांत उल्लंघन के कारण है?

.....

.....

.....

.....

10) भारत में किन चार कारकों ने PACS के कार्य-निष्पादन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है? इनमें से किस एक पर सहकारी समितियों के पुनरुद्धार के लिए विशेष रूप से फोकस किए जाने की आवश्यकता है ताकि सहकारी समितियों की संकल्पित भूमिका प्रभावी ढंग से प्राप्त हो सके?

.....

.....

.....

.....

17.5 सहकारी समितियों से संबंधित विधेयन

भारतीय सहकारी सेक्टर ने 2012 में अपने अस्तित्व के 108 वर्ष पूरे कर लिए हैं (1904 में इस पर प्रथम अधिनियम बनाया गया था)। इन सभी वर्षों में विधायी वातावरण और संरचना भारतीय सहकारी सेक्टर के विकास के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण आयामों में से एक रहा है। इनमें से स्वतंत्रतापूर्व अवधि का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तो 1942 के **बहुएकक सहकारी समितियां** (1942 का MUCS) विधेयक को माना जा सकता है। इस अधिनियम ने एक से अधिक राज्यों में प्रचालन करने वाली सहकारी समितियों के समावेशन और समापन को संभव बनाया था। स्वातंत्र्योत्तर अवधि में AIRCS (1951-54) की सिफारिशों का अनुसरण करते हुए बहुत राज्यों ने सहकारी समितियों पर अपने कानून बनाए/संशोधित किए। समय के चलते एक से अधिक राज्यों में क्षेत्राधिकार रखने वाली सहकारी समितियों को भिन्न-भिन्न कानूनों का सामना करने में समस्याएँ आने लगीं। इससे बहु-राज्य सहकारी समितियां (MSCS) अधिनियम बनाने की आवश्यकता पैदा हुई।

17.5.1 बहुराज्य सहकारी समितियां (MSCS) अधिनियम

बहुराज्य सहकारी समितियां (MSCS) अधिनियम 1984 में बनाया गया था। यद्यपि 1942 के MSCS अधिनियम में सुधार की आवश्यकता उसके क्रियान्वयन के कुछ ही वर्षों बाद अनुभव हो गई थी (कि राज्य द्वारा अनावश्यक हस्तक्षेप, स्वायतत्ता की कमी और व्यापक राजनीतिकरण जैसे कारकों ने सहकारी, समितियों के कार्यकरण को गंभीर रूप से क्षति पहुंचाई है)। अनुवर्ती वर्षों में कई समितियों की सिफारिशों के आधार पर विद्यमान सरकार शासित सहकारी कानून को नया व्यक्ति केंद्रित कानून बदलने की आवश्यकता महसूस की गई थी। आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों ने पारस्परिक सहायता सहकारी समिति (MACS) अधिनियम बनाया और सरकारी हस्तक्षेप के बिना सहकारी समितियों की धारा ही खोल दी। 2002 में राष्ट्रीय सहकारी नीति की घोषणा और नई संविधि (अर्थात् बहुराज्य सहकारी समितियां (MSCS) अधिनियम 2002) द्वारा 1945 के MSCS अधिनियम का प्रतिस्थापन इस संबंध में सरकार द्वारा दो अन्य प्रमुख पहलें थी। बाद में, सहकारी ऋण संस्थाओं के पुनरुद्धार पर कार्यदल (2004) की सिफारिशों के अनुसार सरकार ने मई, 2006 में 106वाँ संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया। स्पष्ट रूप में, संशोधन के प्रावधानों का अभिप्राय सहकारी समितियों के स्वायत्त और लोकतांत्रिक कार्यकरण पर बल देना और साथ ही ''सदस्यों और पण्यधारियों

के लिए उत्तरदायित्व तथा प्रबंधन सुनिश्चित करना'' था। परंतु संशोधन के प्रस्तावित उपबंधों की कठोर आलोचना हुई। कुछ ने तर्क दिया कि संशोधन सहकारी समितियों को सरकार पर अधिक आश्रित बनाकर सरकारी मशीनरी का भाग बना देगा। इस प्रकार, उनके अस्तित्व का प्रयोजन ही पराजित हो जाता है। बाद में, राष्ट्रीय सलाहकार समिति और कृषि पर स्थायी संसदीय समिति (PSCoA) सहित बहुत-सी समितियों और आयोगों ने इस विचार से सहमति व्यक्त की। PSCoA ने विशेष रूप से अनुमोदन किया कि विधेयक को व्यापक मॉडल कानून के रूप में परिवर्तित किया जाए। वैसे इस विषय पर बहस अभी भी जारी है। सहकारी समितियों का कार्यकरण सुदृढ़ करने के लिए 2002 के MSCS अधिनियम के कुछ मुख्य संशोधन उभर कर आए हैं।

17.5.2 MSCS अधिनियम, 2002 में प्रस्तावित संशोधन

सहकारी समितियों पर उच्च अधिकार प्राप्त समिति ने 2009 में अपनी रिपोर्ट और दूसरी ARC, 2008 की नवीं रिपोर्ट में MSCS अधिनियम, 2002 में संशोधन करने के लिए बहुत से सुझाव दिए गए हैं। कुछ प्रस्तावित महत्त्वपूर्ण आशोधन निम्न प्रकार हैं :

1) सहकारी समिति की अंतर्राष्ट्रीय रूप से स्वीकृत परिभाषा, जिसमें उसका स्वैच्छिक, स्वायत्त और लोकतांत्रिक स्वरूप प्रतिबिंबित होता है, अधिनियम में समाविष्ट की जाए।

2) यह सुनिश्चित करने के लिए कि सहकारी समितियां प्रयोक्ता स्वामित्व और उपभोक्ता नियंत्रित हैं, ''सक्रिय सदस्य'' की अवधारणा अधिनियम समाविष्ट की जाए। सक्रिय सदस्य की परिभाषा आगे यह व्यवस्था करने के लिए शामिल की जाए कि केवल सक्रिय सदस्य को ही मतदान/चुनाव लड़ने का अधिकार होगा।

3) सहकारी नेताओं के लिये, उनके निर्वाचित होने के छह महीने के भीतर सहकारी और व्यवसाय प्रबंधन पर प्रशिक्षण (जैसे कि अन्य देशों में) अनिवार्य बनाया जाना चाहिए। इस तरह का प्रशिक्षण; जो लिंग संवेदनशील होना चाहिए के लिए मैनुअल बनाया जाना चाहिए।

4) ''न्यासी उत्तरदायित्व'' के लिए सुस्पष्ट परंतु प्रर्वतनीय प्रावधान, जैसा कि कंपनी अधिनियम में उपबंधित है, लागू किया जाना चाहिए। सहकारी बोर्डों के निदेशकों के लिए, हितों का टकराव रोकने के लिए कतिपय सूचना देना अनिवार्य होना चाहिए।

5) सहकारी समितियों के लिए समय-समय पर अपेक्षाकृत क्षेत्रों में विशेषज्ञों की सहायता लेना आवश्यक है और इसके लिए उन्हें संविदा आधार पर उपयुक्त विशेषज्ञों की सेवाएँ किराए पर लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। MSCS अधिनियम 2002 में सहकारी समितियों के बोर्डों में विशेष क्षेत्र के प्रायोजन का प्रावधान बनाया जाना आवश्यक है।

6) सहकारी समितियों की वित्तीय शक्ति सुधारने के लिए अदत्त मतदानहीन शेयर और IPO जारी कर पूँजी बढ़ाना शामिल किया जाना चाहिए। यह प्रावधान इस विचार से किया गया है कि सहकारी समितियों के कार्यकरण में कंपनी के तरीके अपनाए जा सकें।

7) अन्य देशों में अन्यत्र, जहां कहीं सहकारी समितियां सफल हुई हैं उन्होंने कंपनी की तरह कार्य किया है (परंतु सहकारी समितियों के सिद्धांतों के अंतर्गत)। सहकारी समितियां उत्पादक स्वामित्व व्यापारिक कंपनी के रूप में भी पंजीकृत की जाती है। भारतीय सहकारी समितियों को इस दिशा में अग्रसर करने के लिए MSCS अधिनियम के अधीन सहकारी समितियों को भारतीय कंपनी अधिनियम, 1956 के विद्यमान उपबंधों के अधीन उत्पादक कंपनियों के रूप में अपने आपको नियमित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इस सीमा तक कंपनी अधिनियम 1956 में उपयुक्त प्रावधान करने आवश्यक हैं।

17.6 सारांश

भारत में सहकारी समितियों का इतिहास एक शताब्दी से अधिक पुराना है। कृषि विकास में सहकारी समितियों ने हरित क्रांति अवधि में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। परंतु कुछ विशिष्ट क्षेत्रों, जैसे डेयरी सेक्टर, में उनकी सफलता के बावजूद सहकारी समितियां अपने बहुत से प्रारंभिक स्वीकृत सिद्धांतों को सामान्यतः खो चुकी हैं: उन्हें स्वायत्त, स्वैच्छिक, आत्मनिर्भर और लोकतांत्रिक व्यापारिक उद्यमों के रूप में कार्य करना चाहिए जो अपने सदस्यों की आर्थिक आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को पूरा कर सकें। वे कारक जिन्हें सहकारी समितियों के कार्य-निष्पादन को प्रतिकूल ढंग से प्रभावित करने वाला माना गया है, उनमें विशाल सदस्यता आकार, सरकारी सहभागिता और नियंत्रण प्रमुख हैं। सहकारी समितियों के पुनर्वलन के लिए उनके लोकतांत्रिक और स्वायत्त मूल्यों को बहाल कर 2000 की दशाब्दी के प्रारंभ में मॉडल कानून का सुझाव दिया गया था। इसके अलावा MSCA अधिनियम 2002 में कई परिवर्तन भी सुझाए गए थे ताकि सहकारी समितियां कंपनियों की तरह कार्य करके अपनी पूँजी आधार सुदृढ़ करने के लिए IPO जारी कर बाजार से पूँजी जुटा पाएं। स्वायतत्ता के संवर्धन के लिए भी सुझाव दिये गए हैं। एक अन्य सुझाव दिया गया है कि उन्हें भारतीय कंपनी अधिनियम के अधीन उत्पादक कंपनियों के रूप में निगमित (अर्थात् पंजीकृत) होना चाहिए। संक्षेप में भारत में सहकारी सेक्टर सुदृढ़ और पुनर्जीवित करने की आवश्यकता का सार रूप में, कानूनी, संस्थानिक और नीतिगत परिवर्तनों के सभी पहलुओं को शामिल करते हुए बहुआयामी सुधार हो सकता है।

17.7 शब्दावली

अतिब्याज : ब्याज की असंगत ढंग (उच्च दरों) पर कर्ज देने की प्रथा।

रॉशडेल पायनियर्स : इंग्लैंड में स्वावलंबन और पारस्परिक सहयोग पर आधारित प्रथम उपभोक्ता समिति, रॉबर्ट ओवन द्वारा किया गया था।

न्यासी उत्तरदायित्व : न्यासी शब्द अधिकांशतः उत्तरदायित्व के साथ प्रयुक्त होता है। इस प्रकार सहकारी बोर्डों में न्यासी उत्तरदायित्व प्रदत्त सदस्य से सामान्य नागरिक की अपेक्षा अधिक दृढ़ता से

व्यवहार करने की आशा की जाती है। उसे ऐसी स्थिति में नहीं होना चाहिए कि उसके 'न्यासी कर्त्तव्य' का उसके व्यक्तिगत हितों से टकराव हो। इस प्रावधान से युक्त सहकारी समिति के बोर्ड के सदस्य आचरण का ऐसा मानक अपनाने की आशा की जाती है जिसमें सहकारिता के हितों को सर्वोपरि रखा जाता है।

PACS : PACS या प्राथमिक कृषि सहकारी समितियां ग्राम स्तर पर किसानों को ऋण वितरित करने की आधार स्तर की इकाइयां है। उनकी संख्या के अनुसार, 1951-2010 की अवधि में इसमें अधिक वृद्धि नहीं हुई है परंतु उनका सदस्यता आकार औसत लगभग 10 गुणा बढ़ा है।

17.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Golait, Ramesh (2007), "Current Issues in Agricultural Credit in India : An Assessment", RBI Occassional Papers, Vol. 28, No. 1.

Government of India (2008), Ninth Report of the Second Administrative Reforms Commission on "Social Capital – A Shared Destiny", Chapter 6 on Cooperatives, GoI.

Governmnent of India (2009), Report of the High Powered Committee on Cooperatives, Ministry of Agricuture, GoI. (Chairman: S.G. Patil).

Misra, Biswa Swarup (2006), 'Performance of Primary Cooperatives in India : An Empirical Analysis', Xavier Institute of Management, Bhubneswar [http://mpra.ub.uni-muenchen.d//21890/].

17.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) प्रश्न 1 से 10 के लिए भाग 17.2 देखिए और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 17.3 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए उपभाग 17.3.1 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 17.3.1 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 17.3.2 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 17.3.2 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए उपभाग 17.3.2 और उत्तर दीजिए।

7) देखिए भाग 17.4 और उत्तर दीजिए।

8) देखिए भाग 17.4 और उत्तर दीजिए।

9) देखिए उपभाग 17.4.1 और उत्तर दीजिए।

10) देखिए उपभाग 17.4.1 और उत्तर दीजिए।